विट्ठल नाथ जी

सनातन धर्म में वर्णाश्रम व्यवस्था है। पच्चीस वर्ष का ब्रह्मचर्य, फिर पच्चीस से पचास वर्ष तक गृहस्थाश्रम, पचास से पचहत्तर तक वानप्रस्थ और अंत में संन्यास। वानप्रस्थ का तात्पर्य भी अपने को संन्यास के लिए तैयार करना ही है। हमारे सिद्धान्त जीवों को फंसाने वाले नहीं, उन्हें संसार चक्र से निकालने वाले हैं।

भगवान के चौबीस अवतारों में पहला अवतार है सनकादिक ऋषियों का। इस अवतार में भगवान ने निवृत्ति धर्म की ही शिक्षा दी, प्रवृत्ति धर्म की नहीं। मानव शरीर निवृत्ति के लिए मिला है। एक काल में भारतवर्ष में आचार्य परम्परा से निवृत्ति मार्ग का ऐसा बोलबाला हो गया कि छोटे छोटे बालक भी साधुओं की टोली देखते और घर-बार छोड़ कर साधु हो जाते। ठाकुर जी ने विचार किया कि संतुलन बिगड़ रहा है। गृहस्थ नहीं होंगे तो साधु भी कहां से आएंगे?

इसी संतुलन के लिए भगवान का मुखारविंद श्री वैश्वानरावतार वल्लभाचार्य जी के रूप में प्रकट हुआ। इन्होंने भी निवृत्ति का निश्चय किया। दिग्विजय करते हुए जब महाप्रभु वल्लभाचार्य जी पण्ढरपुर पहुंचे तो वहां उन्होंने श्रीमद् भागवत जी का पारायण किया। अब भी वहां महाप्रभु की बैठक है, नीचे गुफा है जिसमें उनका मिलन श्री पण्ढरीनाथ जी से हुआ। वहीं बैठ कर उन्होंने पारायण किया था और पण्ढरीनाथ जी जल पार करके उनसे मिलने आए। दोनों का जब मिलन हुआ तो वहां का पाषाण भी पिघल गया और वहां आचार्य जी और ठाकुर जी दोनों के चरण चिन्ह बने हुए हैं। आचार्य जी ने कहा "जै जै, हम तो पाठ के बाद स्वयं ही आपके मंदिर में आने वाले थे। आपने कष्ट क्यों किया?"

ठाकुर जी ने कहा "क्योंकि हमें पता चला कि तुम संन्यास लेना चाहते हो।" वल्लभाचार्य जी ने कहा "आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं।" ब्रह्मचर्य के बाद हम सीधे संन्यास आश्रम में जाना चाहते हैं। ठाकुर जी ने कहा "यह मार्ग सब आचार्य दिखा चुके हैं रामानन्दाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी आदि। लेकिन आपको तो इस सिद्धान्त को जीवों को समझाना है कि प्रवृत्ति में रह कर निवृत्ति कैसे की जा सकती है। इसलिए हम तो यह समझाने आए हैं कि आप ब्याह कर लो।"

वल्लभाचार्य जी ने कहा "तुमको हजार सोहें, हमको पहाड़ एक। गृहस्थाश्रम बंधन कारक है, आपकी आज्ञा से हम गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें तो क्या लाभ होगा?" ठाकुर जी ने कहा "हे वल्लभाचार्य जी, आपने जब मेरा प्रथम दर्शन किया तो आपके हृदय में कौन सा भाव जगा?" आचार्य बोले "ऐसा भाव जगा कि तुम मेरे लाला हो।" ठाकुर जी बोले "आपके मन में वात्सल्य

भाव जगा तो मेरे मन में भी आया कि आप विवाह कर लें तो मैं लाला बन कर आऊं।" आचार्य बोले "आप लाला बन कर आएं तब तो हजार बार गृहस्थाश्रम में चले जाएंगे।"

वल्लभाचार्य जी ने विवाह किया। बड़े पुत्र श्री गोपीनाथ जी भी भगवान की ही कला हैं और विट्ठलनाथ जी तो साक्षात् विट्ठल भगवान ही थे। हम इनका ही चरित्र अभी देखेंगे।

इनका प्राकट्य विक्रम संवत् १५७२ में पौष कृष्णा नवमी को चरणाद्रि, जिसे चुनार कहते हैं, में हुआ। इनकी आयु जब पन्द्रह वर्ष की थी तभी श्रीमन् महाप्रभु जी का लीला संवरण हो गया। उस छोटी से आयु में ही इन्होंने काशी में रहकर सभी वेद, सभी शास्त्रों का अध्ययन सम्पूर्ण रूप से कर लिया था। उस आयु में ही उन्होंने अनेक ग्रन्थों का भी सृजन कर लिया था। सम्पूर्ण विद्वत् समाज में आपका सुयश छा गया। महाप्रभु जी द्वारा लिखित जो ग्रन्थ अधूरे रह गए थे उनको भी गुसाँई विट्ठल नाथ जी ने पूर्ण किया और उन पर टीका, टिप्पणियां लिखीं, तात्पर्य समझाया। राजा टोडरमल ने भी आपसे दीक्षा ली। अनेक राजा महाराजा आपके शिष्य हुए।

गुसाँई जी के दो विवाह हुए। पहली पत्नी रुक्मिणी देवी के छः पुत्र हुए गिरधर जी, गोविंद रायजी, बालकृष्ण जी, गोकुल नाथ जी, रघुनाथ जी, यदुनाथ जी। चार पुत्रियां हुईं शोभा, यमुना, कमला और देवकी।

दूसरी पत्नी पद्मावती से घनश्याम जी प्रकट हुए। वर्तमान में श्री गिरधर जी और श्री यदुनाथ जी का ही वंश सारी धरती में वैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार कर रहा है।

गुसाँई विट्ठलनाथ जी के कुछ चरित्र बड़े अद्भुत हैं और आदर्श को प्रस्तुत करने वाले हैं। एक बार गुसाँई जी ठकुरानी घाट पर कटि पर्यन्त खड़े हो कर संध्या कर रहे थे। उसी समय बीरबल के साथ अकबर आया। जब गुसाँई जी संध्या करके बाहर निकले तो पूछा "जै जै, साहिब कैसे मिलते हैं?" गुसाँई जी बोले "जैसे आप आकर मुझसे मिले वैसे मिलते हैं।" इसका तात्पर्य यह है कि जीव का कर्त्तव्य तो साधन भजन करना है, लेकिन भगवान स्वयं जीव पर कृपा करके मिलते हैं। वे साधन साध्य नहीं हैं, कृपा साध्य हैं।

अकबर ने बहुत बड़ी भूमि दी। अकबर जुड़ा कैसे? इसकी कथा है एक बार अकबर की रानी जोधाबाई नाव से गोकुल तक पहुंच गई। गुँसाई जी से कहा "महाराज, आप तो सिद्ध संत हैं, कोई ऐसा टोना टोटका बताएं कि मेरा पति शहंशाह अकबर मेरे बस में हो जाए।" गुँसाई जी ने एक ताबीज बनाया और उसे दाहिनी भुजा पर बांध लेने को कहा। कानाफूसी हुई, अकबर ने भी सुना। उसने क्रोध में आकर ताबीज को तोड़ दिया यह देखने के लिए कि इसमें क्या है? उसमें गुंसाँई जी के हाथ का लिखा हुआ था जो नारी टोटका टोना करके अपने पति को वश में करना चाहती है वह तो अभागिनी है। पति को वश में करने का एकमात्र उपाय है निश्छल, निष्कपट

भाव से उसकी सेवा करना और उसकी आज्ञा का पालन करना। इस वाक्य को पढ़ कर अकबर बड़ा प्रभावित हुआ अरे, इतना बढ़िया उपदेश भुजा में बांधा है!

अकबर ने गोमाता के चरने के लिए ५०० एकड़ भूमि तो गिरिराज जी के निकट दी, और भी बहुत बड़ी भूमि गोकुल में दी। इतना ही नहीं, गुसाँई जी की शरण में ताज बीबी, रसखान, अली खान आदि मुस्लिम भी आए और उन्हें भी गुसाँई जी ने अंगीकार किया।

एक बड़ा सुंदर प्रसंग है। अष्टछाप के आठ कवियों में एक छीत स्वामी थे छीतू चौबे। मथुरा जी के बड़े विद्वान, कवि और एक नम्बर के उद्दण्ड भी थे। जमुना जी के किनारे भंग छानना और यजमानी करना उनका काम था। एक दिन तरंग में थे। किसी ने कहा "अरे चौबे जी, अब तुम्हारी पुराहिताई तो गई। अब तो दक्खिन ते आयो एक, गुँसाई कहैं व्रजवासी वातें, सबके सब वाई के चेला बन रहैं हैं। यों कहैं कि वो ब्रह्म सम्बन्ध दे। दो चार दिनां और घोट लो छान ल्यो। जब कोई कछु देवेगो ही नांय तो कहां ते ठंडाई छनेगी?"

इन्हें आवेश आ गया "हमते बड़ो विद्वान है? हम शास्त्रार्थ हू करबो जानैं और लड़ाई भिड़ाई करबो हूं जानैं।" वे शास्त्रार्थ कर लड़ने भिड़ने और उद्दण्डता करने के लिए गुँसाई जी के पास पहुंचे। हंसी उड़ाने के लिए एक खोटा सिक्का और एक सड़े नारियल में राख भर कर ले गए "लो गुंसाँई जी महाराज, आपकी भेंट।" गुसाँई जी ने उस खोटे सिक्के का जैसे ही स्पर्श किया, वह खरा हो गया, सेवक से बोले "जाओ इसके पैसे ले आओ।" खोटा सिक्का बजार में चल गया। और सड़ा हुआ नारियल गुंसाँई जी के चरण स्पर्श से एकदम वृक्ष का ताजा हरा नारियल बन गया। यह दृश्य देख कर छीतू चौबे का सारा नशा उतर गया। आखिर तो भगवान के सखा ही हैं, यह तो थोड़े दिनों का नाटक था। जैसे ही आचार्य चरण का दर्शन मिला, उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई, वे भाव में भर गए और गुंसाई जी के स्थान पर उन्हें मोर मुकुट बंसी वाले गिरधर गोपाल जी का दर्शन हुआ। उनका प्रथम पद है

भई अब गिरिधर सो पहिचान।
कपट रूप धरि छबि में आयो, पुरुषोत्तम मैं जान।।
छोटो बड़ो कछु नहीं जान्यौ छाय रह्यो अज्ञान।
छीत स्वामी देखत अपनायो श्री विट्ठल कृपा निधान।।

छीत स्वामी तो फूट फूट कर रोने लगे। जो साथी आए थे, वे कहने लगे "अरे, इस पर भी जादू चल गया, अब क्या होगा?" बाद में तो वे सब भी शरणागत हो गए। रोते हुए छीत स्वामी ने कहा "यह खोटा सिक्का तो इसी दरबार में चल सकता है। यह सड़ा गला नारियल भी इन्हीं चरणों में पहुंच कर चोखा हो सकता है।"

गुसाँई श्री विट्ठलनाथ जी के लिए नाभा जी ने लिखा है

विट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यौं लाड लड़ायकै सुख लियौ।
राग भोग नित विविध रहत परिचर्या ततपर।
सय्या भूषन वसन रचित रचना अपने कर।
वह गोकुल वह नन्द सदन दीच्छित को सोहै।
प्रगट विभौ जहाँ घोष देखि सुरपति मन मोहै।
वल्लभ सुत बल भजन के कलियुग में द्वापर कियौ।
विट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यौं लाड लड़ायकै सुख लियौ।

सौराष्ट्र के एक बड़े सिद्ध संत थे सम्पूर्णानन्द जी। एक बार उन्होंने दास से पूछा "बताओ, शरणागति का क्या अर्थ है?" हमने गुरुजनों से जैसा सुना था वैसा बता दिया। सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। फिर कहा "एक वाक्य में मैं बताऊं? शरणागति माने स्वीकृति। भगवत् संबन्ध की हृदय से स्वीकृति का नाम है शरणागति। भगवान ही कर्ता हैं, भगवान ही कारयिता हैं। हम केवल भगवान के हैं, भगवान केवल हमारे हैं यह भीतर से स्वीकार कर लेना यही है शरणागति।"

कर्ता भी भगवान हैं और भोक्ता भी भगवान हैं। प्रकृति भोग्य है और जीव भी भोग्य है। पर जीव अपने को भोक्ता मान लेता है और भगवान की भोग्या प्रकृति को अपनी भोग्या मान लेता है। इसी दुर्बुद्धि के कारण ही वह संसृति के चक्कर में पड़ता है। अब यह समझ लो कि यह बात झूठी है। इसीलिए संत कहते हैं कि अपने को कर्तापने के अहंकार से मुक्त कर लो। जो कर्ता होगा वही भोक्ता होगा। एक छूटेगा तो दूसरा अपने आप छूट जाएगा।

संसार तो वासना की पूर्ति का व्यापार मात्र है, इसमें प्रेम तो है ही नहीं। पुत्र की पिता से वासना जुड़ी हुई है, पिता की पुत्र से, और दोनों का व्यवहार चल रहा है। इसी को दुर्भाग्य से लोगों ने प्रीति मान रखा है। नानक जी का पद है

जगत् में झूठी देखी प्रीत।
अपने ही सुख सों सब लागे, क्या दारा क्या मीत।

तब फिर सच्ची प्रीति किसकी है?

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।।

प्रीत की रीत रंगीलो ही जाने।
कै जाने वृषभानु नंदिनी, कै जाने यह नन्द दुलारो।

भैया कर्ता और कारयिता भाव से मुक्त होना तो बड़ा ही कठिन है। तब फिर जीवों के उद्धार का क्या उपाय है? बस यही समझाने गुसाँई विट्ठलनाथ जी का अवतार हुआ था। उन्होंने

कहा ऐ जीवों, हम नहीं कहते कि तुम कर्ता मत बनो, बने रहो कर्ता झूठ मूठ के लिए ही जैसा अब तक बने रहे, पर अब यह निश्चय कर लो कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं, भगवान की प्रसन्नता के लिए कर रहे हैं। श्री कृष्ण प्रीत्यर्थ कर रहे हैं, और करने के बाद कृष्णार्पणमस्तु। हे नाथ, हम आपकी ही प्रसन्नता के लिए कर रहे हैं और आपके ही चरणों में यह समर्पित है।

दूसरी बात अपनी सम्पूर्ण प्रवृत्तियों को भगवान को अर्पित कर दो। देखिए, रजोगुण, तमोगुण तो बंधन का कारण है ही। एक फूस की झोंपड़ी डाल ली, कुछ भी नहीं है उसमें, सीताराम कह कर भारत भ्रमण को निकल पड़े, पर मन में आता रहेगा हमारी झोंपड़ी में कोई आग न लगा दे, कहीं जंगल की ही आग से न जल जाए। कहीं दूसरा आ कर कब्जा न कर ले। झोंपड़ी बनाई तो छोटा बंधन, महल मकान बनाए तो बड़ा बंधन। कहावत है कुटिया कूट देती है, या दुष्ट बदमाश कूट देते हैं। श्री रामसुख दास जी महाराज कहते थे दुकान, मकान, कुटुंब छोड़ना पड़ेगा यह तो हो गई मजबूरी और भीतर से छोड़ दिया तो यह हो गई बुद्धिमानी। इसमें मजा है।

अयोध्या के सिद्ध संत आचार्य कृपा शंकर जी महाराज कहा करते थे "संसार तुमको लात मारे, उसके पहले तुम इसको दस लात मार कर चल दो। तब तुम मूंछ पर ताव दे सकते हो।" जब चित्त में वैराग्य की कमी होती है तो लोग घर छोड़ कर तीर्थ धाम में भी जाकर व्यापार करते हैं। क्षणिक वैराग्य जग गया तो वृंदावन आ गए। यहां आकर सोचने लगे अरे, यहां तो बड़ी संभावना है, जमीन खरीद ली जाए, फ्लैट बना कर बेचें। खरीदने वाले खरीद भी लेते हैं, फिर एक चौकीदार रख छोड़ते हैं, चौकीदार को ब्रजरज मिल गई, सेठ जी को नहीं।

रुपए से न ज्ञान मिलता है, न भक्ति मिलती है, न वैराग्य मिलता है, न रुपए से जीव का कल्याण होता है। कल्याण तो छोड़ो, भूख-प्यास भी नहीं बुझती। वह भी अन्न जल से बुझती है, रुपए से नहीं।

मनु महाराज का चौथापन आ गया, विषयों से वैराग्य नहीं हुआ। उन्हें बहुत दुख लगा। राज्य पुत्र को देकर पति-पत्नी वन में चले गए। वहां अनुराग पूर्वक भजन करने लगे तो उसका फल हुआ व्याकुलता जगी

देखहिं हम स्वरूप भरि लोचन, करहु कृपा प्रणतारति मोचन।।

हम निवेदन कर रहे थे कि रजोगुण बंधन कारक है, और तमोगुण तो स्पष्ट बंधन कारक है। किसी को मार दो जान से, फिर कोर्ट में कहो हमें तो पता ही नहीं था कि किसी को मारने से सजा हो जाती है। बताओ, बच जाओगे? तुम्हें पता हो या न हो, तमोगुण की क्रिया करके देखो, तुरत बंधन हो जाएगा। लेकिन महत्व की बात यह है कि यदि भगवान को अर्पण नहीं किया गया तो सत्त्वगुण भी बंधन कारक हो जाता है। यह सात्विक माया है। जिन्हें हम पवित्र कृत्यों की संज्ञा देते हैं अस्पताल-धर्मशाला बनाना, अन्न क्षेत्र चलाना आदि सात्विक प्रवृत्तियां हैं। पर इन्हें भी यदि

भगवान को अर्पित नहीं किया गया तो ये कर्तापने का अहंकार जगाएंगी, अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न कर देंगी। पता भी नहीं चलेगा, सत्त्वगुण जान पड़ेगा, लेकिन उसके साथ चिपट कर रजोगुण आ जाएगा। फिर, रजोगुण-तमोगुण की बड़ी घनिष्ठ मैत्री है, रजोगुण से भी एक मात्रा ज्यादा तमोगुण आ जाएगा।

तब क्या करें, बड़ी समस्या है। देखो, ब्रह्मा जी का कार्य रजोगुण का कार्य है सृष्टि विस्तार, लेकिन ब्रह्माजी रजोगुण के वश में नहीं हैं। शंकर जी का कार्य तो संहार तमोगुण का कार्य है, लेकिन वे तमोगुण के बंधन में नहीं हैं। इतना संहार करते हैं, पर कभी उनपर मुकदमा चला? इसका कारण यह है कि ब्रह्माजी स्वयं की इच्छा से नहीं, भगवान की प्रसन्नता के लिए कार्य करते हैं और कर के भगवान को ही अर्पण कर देते हैं। क्या प्रमाण है? उन्होंने स्वयं कहा है

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषागतिः।
न मे हृषिकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः।।

ब्रह्माजी कहते हैं बेटा नारद, मेरी इन्द्रियां, मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरा चित्त कभी संसार की ओर नहीं जाता क्योंकि मेरे प्रेम पूर्ण हृदय के स्वामी भगवान श्री हरि हैं।

और शिव जी

राम प्रभाव जानि शिव जीको। काल कूट फल दीन अमी को।।

ब्रह्माजी और शंकर जी, दोनों भगवान की आज्ञा से भगवान की प्रसन्नता के लिए, भगवान को अर्पित करते हुए कार्य करते हैं इसलिए बंधन में नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि अपने समस्त कर्म भगवान को अर्पित कर दो, बंधन मुक्त हो जाओगे। व्यापार करना रजोगुण की क्रिया है, बंधन कारक है, पर यदि कोई इस संकल्प को ले कर कार्य करता है कि घर में श्री ठाकुर जी विराजमान हैं, हमारा घर नहीं है, ठाकुर जी का घर है, ठाकुर जी ने हमें वैश्य वर्ण में उत्पन्न किया है कृषि, गौरक्षा और वाणिज्य हमारा धर्म है। हम धन कमाएंगे पवित्र रीति से। यदि धन नहीं कमाएंगे तो ठाकुर जी की अष्टयाम सेवा कैसे होगी? घर में संत-महात्मा, अतिथि पधारेंगे तो उनका सत्कार कैसे होगा? गोमाता की सेवा और दीन दुखी का आदर कैसे होगा? ऐसा पवित्र भाव और उद्देश्य बना रहे तो खूब कमाओ धन, बस उद्देश्य ऐसा पवित्र बना रहे। आप कहेंगे कि हम तो भगवान को अर्पित कर ही देते हैं। यह सत्य नहीं है। अर्पित कर देते तो हानि होने पर कष्ट और लाभ होने पर हर्ष नहीं होता। यदि दुकान के मालिक ठाकुर जी हैं और आप नौकर हो तो बताओ, आपके दुकान के नौकर को आपके घाटे का कोई असर होता है? भले व्यवहार के लिए कह देता है कि सेठ जी, बड़ा बुरा हुआ, नुकसान हो गया।

नौकर हो तो ईमानदारी से काम करना चाहिए कि ठाकुर जी की दुकान में घाटा न हो, फिर भी हो जाए तो कोई बात नहीं जैसी ठाकुर जी की इच्छा। ऐसा ही भाव खेती करते हुए रखें तो खेती करना भजन हो जाएगा। माताएं घर में रोटी बनाती हैं, झाड़ू लगाती हैं, यदि घर आपका नहीं, ठाकुर जी का है तो सेवा अपने हाथ से ही क्यों नहीं? घर का काम हाथ से करें तो सारी योग की क्रियाएं भी अपने आप हो जाएंगी।

आपके घर में साक्षात् लाला बैठा है। घर मेरा है यह बेइमानी है। घर ठाकुर जी का है यह ईमानदारी है। यह भाव पक्का हो जाए तो घर में झाड़ू लगाना मंदिर में झाड़ू लगाने के समान फल देने वाला हो जाएगा। घर में पवित्रता होगी, आपके कर्म भगवान को प्रसन्न करने वाले होंगे।

यह सब सिखाने के लिए ही गुसाँई विट्ठलनाथ जी के रूप में भगवान स्वयं आए। अपने घर में लाला को पधरा लो, ब्रह्म संबन्ध प्राप्त कर लो और निरन्तर भगवान श्री कृष्ण के नाम-रूप-गुण-लीला का अनुसंधान करो। घर, दुकान, व्यापार, परिवार सब ठाकुर जी का है, ठाकुर जी के लिए है। गुसाँई जी का सिद्धान्त है

सर्व साधन शून्योऽहं सर्व सामर्थ्यवान् भवान्।
श्री गोकुल प्राण नाथ न त्याजेऽहं कदापि वै।

हे नाथ, मैं सभी प्रकार के साधनों से शून्य हूं। मुझमें न ज्ञान है, न कर्म है, न भक्ति है, न उपासना है और आप सर्वसामर्थ्यवान हैं क्या बढ़िया मेल है। हे श्री गोकुल प्राण नाथ, मैं त्याज्य नहीं हूं। किसी अवस्था में आप मेरा त्याग न करें क्योंकि मुझे आपको छोड़ कर कोई गति ही नहीं है। हे नाथ! यह बात हम इसलिए कह रहे हैं कि

यदि तुष्टोऽसि रुष्टो वा त्वमेव शरणं मम।
मारणे वारणे वापि दीनानां न प्रभुर्गतिः।

हे नाथ यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं, तो भी मेरा एकमात्र शरण अर्थात् आश्रय आप ही हैं। यदि आप नाराज हैं तो भी आप ही हमारी गति हैं। मारो तो भी आप ही गति हैं और स्वीकारो तो भी आप ही गति हैं। हे नाथ, हमारे जैसे दीन हीनों की गति तो आप ही हैं।

मलूकदास जी का एक वाक्य है

दीन दयाल सुनी जब तें तब तें मन में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊं कहां अब तेरे ही नाम की फेंट कसी है।

और तो हमारे पास कुछ है नहीं, कमर कस कर यह निश्चय कर लिया है कि जब तक जियेंगे, श्री राम जय राम जय जय राम करते रहेंगे।

तेरो ही आसरो एक मलूक को, तेरे समान न दूजो जसी है।

ऐ हो मुरारी पुकारि कहौं यामे मेरी हंसी नाय तेरी हंसी है।

गुसाँई विट्ठलनाथ जी का यही उपदेश है कि अपने आप को समर्पित कर भगवान की सेवा में लग जाओ। यह उपदेश उन्होंने केवल वाणी से नहीं दिया अपितु स्वयं करके दिखाया कि श्री कृष्ण सेवा कैसे करनी चाहिए।

नाभा जी ने लिखा है विट्ठलनाथ व्रजराज ज्यौं लाड़ लड़ायके सुख लियो। नन्द बाबा और यशोदा मैया ने लाला को लाड़ करके जो सुख लिया उसे देख कर ठाकुर जी भी ललचा गए। उनका भी मन हुआ कि ऐसा सुख हम भी लें। इसलिए उन्होंने एक अंश से विट्ठलनाथ जी के रूप में जन्म लिया और नन्द बाबा के समान लाड़ लड़ाने का सुख लिया।

राग भोग नित विविध रहत परिचर्या ततपर।
सय्या भूषन वसन रचित रचना अपने कर।

नित्य नए नए राग और नए नए भोग की परम्परा को अष्टछाप की स्थापना करके प्रतिष्ठत किया। ठाकुर जी की प्रत्येक सेवा राग के अनुरूप की जाएगी दिन, रात, समय और लीला के अनुरूप राग। राग के बिना भोग नहीं। वल्लभ कुल की परम्परा यही है कि कीर्तनिया जो गाएंगे, उसी के अनुरूप आचमन, बीरी आदि की सेवा होगी।

एक बार जतीपुरा में गुसाँई जी जब सेवा के लिए मंदिर में पधारे तो ठाकुर जी थर थर कांप रहे थे। वे घबरा गए "जै जै, लालजी, आज इतने क्यों डरप रहे हो?" ठाकुर जी जोर से चिल्ला कर बोले "म्लेच्छ आया, म्लेच्छ आया।" उस समय मुसलमानों का आतंक था, मठ मंदिर तोड़े जा रहे थे। गुसाँई जी घबरा गए "जै जै, क्या किया जाए?"

"जल्दी करो, जल्दी करो, आरती के चक्कर में मत पड़ो, मुझे छिपाओ" यह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक सर्वेश्वर परब्रह्म परमात्मा कर रहे हैं "हम तो तुम्हारे ही सहारे हैं, बचाय लो गुसाँई जी, हमें बचाय लो।"

"महाराज कहां ले चलें?"

"टोंड के घने में ले चलो, वहां कोई नहीं पहुंच पाएगा।" टोंड का घना गिरिराज जी की परिक्रमा में ही कदम्ब वृक्ष का घना स्थान है।

गुसाँई जी सोचने लगे कि इतनी जल्दी क्या व्यवस्था की जाए, उस जमाने में इतने गाड़ी घोड़े नहीं होते थे लोगों के पास। आन्योर गांव के सद्दू पांडे को कहा गया तो उन्होंने कहा "गुसाँई जी, गाड़ी तो हमारे पास थी पर बैल बूढ़े ह्वै के भगवान के धाम चले गए, अब गाड़ी भी टूट गई। एक भैंसा है हमारे घर में।"

गुसाँई जी ने पूछा "जै जै, बताओ क्या करें?"

ठाकुर जी ने कहा "कोई बात नहीं, पांडे जी का भैंसा ले आओ। आज उसी पर सवारी करेंगे। हमारे साले साहब (यमराज) तो हमेशा भैंसा पर ही बैठते हैं, आज थोड़ी देर हम भी सवारी करेंगे।"

गोविन्द कुंड का जल ला कर भैंसा को स्नान कराया गया, बेशकीमती इतर मला गया। भैंसा चकाचक चमक गया। तुलसी माला पहनाई, तिलक लगाया और 'श्री कृष्णः शरणं मम' सुनाया। उस पर कोमल गद्दी लगा कर ठाकुर जी को बिठाया। ठाकुर जी बड़े प्रसन्न हो रहे थे। देखो, वैष्णव सद्दू पांडे के भैंसा को भगवान के श्री अंग के स्पर्श का सौभाग्य मिल गया। भैंसे ने कौन सा साधन किया था? उसके तो भाग खुल गए। गुसाँई जी साथ में अमनिया सामग्री और सब साज बाज ले कर चले। रागभोग की सेवा है, इसलिए तानपूरा और पखावज आदि भी साथ चले। अचानक भैंसा बिचका और हुर्र हुर्र करता हुआ दौड़ा। ठाकुर जी चिल्लाए "अरे अरे, पकड़ो।" कुंभन दास जी और चतुर्भुज दास जी दौड़े लाल जी कहीं गिर कर चोट न खा जाएं। दोनों ने एक एक भुजा ठाकुर जी की पकड़ ली। अब भैंसा चल रहा है तेजी से, सारे वैष्णव पीछे पीछे जा रहे हैं। टोंड के घने में पहुंचे ठाकुर जी की सुंदर चौकी रखी गई। ठाकुर जी विराज गए। उन्हें झारी से जल पिलाया और भोग धराया "जै जै, आरोगो। वहां से चल कर आए हो, थक गए होगे।" ठाकुर जी बोले "भूख तो बड़े जोर की लग रही है, पर खाएंगे नहीं।"

"अरे! क्यों नहीं खाएंगे?"

"गुसाँई जी, आपने हमारो अभ्यास बिगाड़ दियो। आप गाय गाय के हमें खवाओ। सबरी सेवा गाय गाय के करो। अब कछु गाओ तो मैं कछु खाऊं।"

अब महाराज, सब थे तो गवैया, सब राग रागिनियों के जानकार थे, पर गवैयों का भी मूड होता है। सब परेशान थे, थके थे, ठाकुर जी तो भैंसा पर बैठ के आए थे, बाकी सब दौड़ते आए थे। किसी की हिम्मत नहीं थी गाने की। सबसे सीधे सादे उनमें कुंभन दास जी थे। गुसाँई जी ने कुंभन दास जी को गाने कहा। उन्होंने तानपूरा संभाला लाल को भावे टोंड को घनो।

इसका भाव यह था कि आपको टोंड का घना में आने की इच्छा थी इसलिए यह नाटक किया। आप तो मजे से बैठ कर आए, हम तो भागते आए। हमारे वस्त्र भी फट गए। आपकी तो पोशाक अनेक भक्त बनवा देंगे पर हम तो गरीब हैं। आगे कहा कौन ढेढिन को जायो किस ढेढिन ने पैदा किया उसको जिसके डर से तुम भाग कर आए? तुम्हें तो टोंड के घने में आ कर भोग आरोगना था इसलिए यह लीला रची।

ठाकुर जी खूब प्रसन्न हुए "वाह वाह कुंभन दास जी।" बहुत प्रेम से जीमते जा रहे थे और सभी झांकी का दर्शन कर निहाल हो रहे थे। राजभोग तक ठाकुर जी वहीं विराजे, फिर बोले "म्लेच्छ गया, चलो अब मंदिर।"

बोलिए वृंदावन बिहारी लाल की जय।

वल्लभाचार्य महाप्रभु का जीवन संघर्ष भरा रहा। वे व्रज में अधिक नहीं रह पाए। उनके बाद श्री गोपीनाथ जा गद्दी पर विराजे और विट्ठलनाथ जी उनसे आज्ञा ले कर ठाकुर जी की सेवा में रहे। गोपीनाथ जी भी अधिक दिन नहीं रहे। उनके बाद वैष्णवों ने गुसाँई जी को ही आचार्य पद पर अभिषिक्त किया।

वे सारी परिचर्या अपने हाथ से करते। शय्या ठाकुर जी की सेज सजाते। भूषण अपने हाथ से आभूषण तैयार करते। ग्रीष्म काल में अपने हाथ से कलियों के आभूषण बनाते। वसन ठाकुर जी के श्री अंग के लिए वसन भी अपने हाथ से तैयार करते।

नाभाजी ने विचार किया कि हम और कहां तक कहें

वह गोकुल वह नन्द सदन दीच्छित को सोहै।
प्रगट विभौ जहां घोष देखि सुरपति मन मोहैं।

दीक्षित (दीच्छित) एक उपाधि है। अग्निहोत्री ब्राह्मण को ही सोम यज्ञ का अधिकार होता था और जो सोम यज्ञ की दीक्षा देते थे उन ब्राह्मणों को दीक्षित कहा जाता था। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का प्रादुर्भाव १०० सोम यज्ञों के बाद हुआ। सोम याजी होने के कारण ये सब दीक्षित माने गए। नाभा जी कहते हैं कि श्री कृष्णावतार के काल में द्वापर में नन्द भवन की जो शोभा थी वह शोभा कलिकाल में गुसाँई जी महाराज ने जतीपुरा में प्रकट कर दी। उस समय मुगल काल था। भारत वर्ष के राजाओं के पास वैसी श्री-समृद्धि नहीं थी, हो भी तो उन्हें भोगने का अधिकार नहीं था। इतिहास के मर्मज्ञ विद्वानों ने यह बात कही है कि जिस काल में हिंदु समाज अत्यन्त हीन भावना से ग्रसित हो गया था, विधर्मियों के द्वारा इतना दमन किया गया था कि वह निरुत्साह हो गया था, उस समय श्री कृष्ण सेवा का रस प्रकट कर के, राग भोग से जोड़ कर जीवों को परम शांति प्रदान की। श्री नाथ जी के वैभव को देख कर बादशाह अकबर भी लज्जित हो गया। उसने कहा हम तो समझते थे कि हम मुल्क के बादशाह हैं, हमारे बड़े ठाठ बाट हैं, पर हम वह सब खा पी नहीं सकते जो श्री नाथ जी को भोग में धराया जा रहा है। हम एक तानसेन पर फूले नहीं समा रहे हैं, यहां तो एक से एक गायक ठाकुर जी को लाड़ लड़ा रहे हैं।

नाभा जी ने कहा अकबर तो बहुत छोटी सी चीज है प्रकट विभौ जहं घोष देखि सुरपति मन मोहें। भगवान की सेवा में श्री गुसाँई जी ने वह वैभव प्रकट कर दिया कि इन्द्र भी मोहित हो गया ऐसे ठाठ तो हमारे भी नहीं हैं।

वल्लभ सुत बल भजन के कलयुग में द्वापर कियौ।
श्री विट्ठल नाथ ब्रजराज ज्यौं लाड़ लड़ायके सुख लियौ।

एक बार गुसाँई जी ने ठाकुर जी को दूध भोग धरायौ। चांदी के कटोरे में बढ़िया केसर इलायची मिश्री युक्त अघौटा दूध ठाकुर जी के मुंह से लगाया कटोरा। ठाकुर जी ने एक घूंट पी कर हाथ से हटा दिया। "जै जै, लालजू क्यों नहीं आरोग रहे हो?"

"गुसाँई जी, यामे इतनी ज्यादा मिश्री है कि हमसे पियो नहीं जाय रह्यो।"

बड़ी मनुहार कर बच्चों की भांति बहला फुसला कर गुसाँई जी ने ठाकुर जी को थोड़ा दूध और पिलाया "थोड़ा पीलो, नहीं तो कमजोर हो जाओगे, थोड़ा सा और पीलो।"

अगली बार गुसाँई जी ने दूध में मिश्री थोड़ी कम डाली। ठाकुर जी ने फिर एक घूंट पी कर हटा दिया। "गुसाँई जी, सीठो दूध हमसे पियो नहीं जाय, या में तो मीठो है ही नहीं।"

"बड़े लीलाधारी हो, ज्यादा मीठो पियो नहीं जाय, सीठो पियो नहीं जाय, आज तो पी लो।" जैसे तैसे पिलाया।

अगली बार केसर मिश्रित दूध और अलग एक कटोरा में मिश्री ले कर आए। ठाकुर जी ने पूछा "यह क्या, अलग से मिश्री क्यों लाए?"

गुसाँई जी ने कहा "मिश्री ज्यादा रह जाए तो भी पसन्द नहीं, कम रह जाए तो भी पसन्द नहीं। आपको जितनी रुचि होय उतना मीठा मिला लो।" ठाकुर जी बोले "गुसाँई जी, हमें तो दूध में मिश्री मिलायबो ही नहीं आवै। हमें तो अंदाज ही नहीं है कितना मिलाना चाहिए।"

गुसाँई जी झुंझला कर बोले "तो फिर ज्यादा लाल बुझक्कड़ मत बना करो, जैसा पिलाएं, वैसा पी लो।" इतना सुनते ही ठाकुर जी गुसाँई जी की छाती से चिपक गए। गुसाँई जी प्रेम से विह्वल हो गए। इस प्रकार उन्होंने नन्द बाबा, यशोदा मैया जैसा सुख प्राप्त किया।

श्री कृष्ण कर्णामृत में श्री बिल्व मंगल महाप्रभु ने बड़ा सुंदर भाव दिया है। यशोदा जी कहती हैं "यमुना जी के कछार में जब तक मूसर वारो दाऊ दादा खेलबे गयो, वाके आइबे से पहले ही तू दूध पी लै। कबरी गैया को दूध पी ले कन्हैया।" ठाकुर जी बोले "मैं नाहीं पियूंगो।" "अरे दारी के, कृषकाय ह्वै जायगो।" ठाकुर जी नहीं माने तो दूसरी बात कही "देख लाला, तू बार बार कहै मैया मोरी कबहुं बढ़ेगी चोटी। कितै दिनां मोहे दूध पियत भए, है अजहूं यह छोटी। कबरी गैया को दूध पी ले, लम्बी हो जाएगी तेरी चुटैया।" ठाकुर जी ने आधा ही दूध पिया और अपनी चुटैया खोल के नापी और रोने लगे "मैया ये तो बितैक की बितैक है, बढ़ी नाय।" मैया

बोली "लाला, एक श्वास में सबरो दूध पीतो तो बढ़ती, ये तो टोटका है। तैने बीच में रोक दियो, सो ये बढ़ती बढ़ती रुक गई।"

"तो मैया का करौ?"

मैया ने फिर दूध भरा कटोरा दिया "अबकी एक सांस में पी जा।" ऐसे मैया लाड़ लड़ाती थी।

एक बार गुसाँई जी ठाकुर जी को शयन करा रहे थे। ठाकुर जी मचल गए यह ठीक नहीं है, तकिया इधर नहीं इधर लगा दो। वैसा कर दिया तो बोले, यह कपड़ा ठीक नहीं है, दूसरा बिछाओ। फिर बोले तकिया दूसरा लगाओ। फिर कहें हमारी सेज यहां नहीं, वहां उठा कर रखो। इसी नाटक में वल्लभ कुल के जल्दी सोने वाले ठाकुर जी ने आधी रात कर दी। गुसाँई जी ने न जाने कितने बिछौने बदले, कितनी शय्या बदली, परेशान हो कर बोले "जै जै तुम सोओगे और हमें सोवन दोगे कि नहीं बताओ?" ठाकुर जी ने कहा "अच्छो, अब तो सो जाऊं, नींद आ रही है।" सेज पर बैठ कर गुसाँई जी का हाथ पकड़ लिया "आपहु याही पै सोओ।" गुसाँई जी का हृदय भर आया। भजन में ही यह सामर्थ्य है वल्लभ सुत बल भजन के कलियुग में द्वापर कियौ।

भजन में लग जाओ तो आपके सामने भी ऐसी लीला प्रकट हो जाएगी। ठाकुर जी ने कहा "आपकी गोद में जैसी नींद आती है वैसी सेज पर नहीं। आपके अंक में सोऊंगा।" ठाकुर जी के सुख के लिए गुसाँई जी भी उसी सेज पर सो गए। ठाकुर जी ने एक चरण उठा कर गुसाँई जी के ऊपर पधरा दिया, अपना हाथ पधरा दिया और उनके वक्षस्थल में अपने मुख को छिपा कर ठाकुर जी सोने लगे, जैसे छोटे बालक मैया के पास सोते हैं।

एक दिनां की बात गुसाँई जी बैठ कर नित्य नियम की माला फेर रहे थे। वा ही समय ठाकुर जी मंदिर सों निकस के आए और गुसाँई जी की गोद में बैठ गए। उनका स्पर्श पा कर गुसाँई जी चौंक गए, वक्ष में छुपा लिया। जप कर रहे थे इसलिए मौन थे, इशारे से ही पूछा "बिना जगाए कैसे चले आए?" ठाकुर जी ने गुसाँई जी के पटका से हाथ निकाल कर इशारा किया। "वो बंदर को बच्चा घुड़की दै रह्यो है, वा सूं डर कर आपकी गोद में आय गयो।" गुसाँई जी ने उन्हें छाती से चिपका कर माला पूरी की और छड़ी उठा कर एक ललकार लगाई तो बंदर भाग गया। तब ठाकुर जी भीतर चले गए।

अब गुसाँई जी सोचने लगे आखिर तो ये परब्रह्म परमात्मा हैं, सामान्य तो नहीं। रामावतार में कनकभूधराकार शरीरा हनुमान जी महाराज इनकी सेवा करते थे। तब तो इनको डर नहीं लगा, अब इतने कमजोर हो गए कि बंदर के बच्चे की घुड़की देख कर डर गए!

मध्यान्ह में ठाकुर जी को राजभोग धरा के, प्रसाद पा के थोड़ी देर के लिए जैसे ही पौढ़े, तनिक तंद्रा आई, वा ही समय ठाकुर जी स्वप्न में आ गए। बोले "गुसाँई जी महाराज, या तो मोय परमात्मा मानो या फिर अपनो लाला मानो। दो बात एक संगे नईं चल सकै। जब मैं आपको लाला हूं, तो छोटे बालक तो अपनी परछाई देख के डरप जायं। एक म्यान में दो तलवार नाय रह सकैं, मोय तो ऐश्वर्य नाय, माधुर्य ही प्रिय है।" गुसाँई जी चौंक पड़े "तुम लाख परब्रह्म परमात्मा हो, पर हमारे तो लाला ही हो।"

श्री अयोध्या के वात्सल्य सिंधु में डूबे हुए सिद्ध संत श्री गोपालाचार्य जी महाराज, ठाकुर जी का अनुभव उन्हें प्राप्त है। एक बार वे लालजी को अपने अचला से ही पोंछने लगे। किसी ने कहा "महाराज जी, आप ठाकुर जी को अपने शरीर के वस्त्र से पोंछ रहे हैं।" उन्होंने गद्‌गद् कंठ से कहा "अरे, तुम क्या जानो, बालक के लिए मां के आंचल से बढ़कर कुछ पवित्र नहीं होता। मैं याकी मैया हूं और ये मेरो लाला है।" एक बार वृंदावन में डेढ़ दो महीने तक लगातार उन्होंने राम जी की बाल लीलाएं सुनाई। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन हम उनके पास बैठे थे। किसी ने आ कर प्रश्न किया "स्वामी जी, यह सब आप कहां से सुनाते हैं? किस ग्रन्थ, पोथी में लिखी हुई हैं?" वे हंस कर बोले "परमात्मा की कथा पोथी में लिखी भई हैं और पूत की कथा हमारे पेट में भरी भई हैं। विश्वास होय तो सुनो नहीं तो मत सुनो।" इनसे अपनापन हो तो जाय, फिर लीला उतनी ही थोड़े ही है जितनी पुरानन में लिखी भई है। लीला तो नित नई है और रसिकों, भक्तों के साथ निरन्तर लीलाएं होती रहती हैं।

गुसाँई जी के सात पुत्र थे। गोकुल में एक चूड़ी पहनाने वाली आई तो गुसाँई जी ने उससे कहा "हमारी सभी बहुओं को चूड़ी पहना आओ।" आज श्री जी ने भी कृपा करने को निश्चय किया तो वे भी उसी झुण्ड में आ गईं। सात को मनिहारिन ने चूड़ी पहना दी पर जब श्रीजी ने अपना कर कंज आगे बढ़ाया तो वह व्याकुल हो गई। कोमलता की सीमा से भी ऊपर सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरौं विदेह कुमारी। जिनके चरणों पर हमारे ठाकुर न्यौछावर हैं उनके कर कमलों की उपमा किससे दी जाए?

दास परमानन्द छिन छिन श्याम जिनकी शरण।
धनि धनि राधिका के चरण।।

श्रीजी के हाथ बढ़ाते ही मनिहारिन को पसीना आ गया इतने सुकोमल कर कंज में चूड़ी का स्पर्श कैसे कराऊँ। बार बार श्रीजी कहें "देख, देर हो रही है, हमें जल्दी चूड़ी धारण करवा।" मनिहारिन का कभी हाथ छूट जाए, कभी चूड़ी छूट जाए। वह बहुत परेशान हो गई तो श्रीजी ने करुणा करके स्वयं ही चूड़ी पहन ली। श्रीजी तो चली गई और मनिहारिन ने गुसाँई जी से चूड़ी के

पैसे मांगे। गुसाँई जी ने दिए तो उसने कहा "मैंने तो आठ को चूड़ी पहनाई, आप सात के पैसे क्यों दे रहे हैं?" गुसाँई जी कहें कि हमारी तो सात ही बहू हैं और वह कहे "नाथ गुसाँई जी, हमने तो आठन को पहराई।" गुसाँई जी इतना हिसाब किताब इसलिए कर रहे थे क्योंकि उनकी मानसिकता ऐसी थी कि घर के खर्च में जितना अति आवश्यक हो उतना ही खर्च किया जाए अधिक से अधिक पैसे ठाकुर जी की सेवा में लगें।

आखिर मनिहारिन ने सौगंध खाई "मैं शपथ पूर्वक कहती हूं कि चूड़ी मैंने आठन कूं पहराई। गिरिराज बाबा की सौगंध, जमुना मैया की सौगंध, मैंने आठन कूं पहराई।" गुसाँई जी ने कहा "पैसे की खातिर झूठी सौगंध भी खाय रही है, ले आठ के पैसे ले जा।" सुन कर मनिहारिन बिगड़ गई "मैं झूठ नाय बोल रही, सांची कह रही हूं, नहीं चाहिए पैसा, रख ल्यो।" गुसाँई जी ने कहा "अरे मैया, तू बिगड़ गई, ले आठ के ले जा," हंस कर आठ के पैसे दे दिए। पर मन में बार बार आ रहा था कि यह क्या हुआ?

जैसे ही गुसाँई जी विश्राम के लिए पौढ़े, श्रीजी स्वप्न में प्रकट हुईं। दिव्य कांति से भवन जगमगा उठा। पहचानने में देर नहीं लगी यह तो स्वामिनी जू हैं। "जै जै, कैसे पधारी हो?" श्री जी ने कहा "गुसाँई जी, जब ये आपके लाला हैं तो क्या मैं आपकी बहू ना हूँ? आपने कही हमारी सब बहुवन को चूड़ी पहराओ, तो सब में क्या हमारो नाम नहीं आवे? जब मैं आपकी बहू हूँ तो आठन के पैसा देवन में आपको संकोच काहे को भयो?"

व्याकुल हो कर गुसाँई जी रोने लगे "जै हो स्वामिनी जू, करुणामयी जू। यह दीन हीन जीव तो आपको भूल ही गया था, पर आपने स्वयं कृपा करके संबन्ध की स्मृति कराई है।"

इसी को कहते हैं रागानुगा भक्ति। यह साध्या रसरूपा प्रेमलक्षणा भक्ति से भी ऊंची है। इसका तात्पर्य है रागात्मक संबन्ध। पतिव्रता नारी का अपने पति से रागात्मक संबन्ध होता है। वह भले ही माला ले कर पति-पति जपती नहीं पर उसके चित्त में निरन्तर पति का चिंतन बना रहता है। इसी प्रकार ठाकुर जी को अपना भाई, अपना सगा-संबन्धी मान लेना यह रागात्मक संबन्ध है। उन्हें पिता मान लेना रागात्मक संबन्ध है। बक्सर वाले पूज्य मामाजी का जानकी जी से बहन का और राम जी से बहनोई का संबन्ध था। राधा रानी से भी बहन और कृष्ण भगवान से भी बहनोई का संबन्ध था। एकबार सिद्ध महात्मा श्री रामसुख दास जी ने पूछा "आप जानकी जी को बड़ी बहन मानते हैं, वे आपको छोटा भाई मानती हैं कि नहीं?" मामाजी ने कहा "हां, मानती हैं।"

"कैसे पता?"

मामाजी तो मामाजी थे। डंडा पटक कर साष्टांग चरणों में पड़ गए "जै जै, आप जैसे संत हमको बार बार मामाजी मामाजी कह रहे हैं। हम पूछते हैं किस नाते से कह रहे हैं? आपका मामाजी कहना ही बताता है कि यह संबन्ध स्वीकृत है।"

स्वामी जी गद्‌गद्‌ हो गए। फिर बोले "एक और प्रश्न पूछना है तुम बड़े भाई हो कि छोटे भाई?" मामाजी बोले "हमारी लाडली जी के इस जगत्‌ में बहुत भाई हैं, उन सब में सबसे छोटा मैं हूं।"

स्वामी जी बोले "सबसे छोटे हैं तो कभी कभी गोद में उठा कर दुलार भी करती होंगी। खिलाती पिलाती भी होंगी। सिर में पीड़ा होने पर दबाती भी होंगी।"

मामाजी एक शब्द भी नहीं बोल पाए, फूट फूट कर रोने लगे और चरणों में मस्तक रख दिया।

अरे भाई ठाकुर जी भी ऐसे हैं ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्‌। भक्त भी कहते हैं

जो बनाओ सो बन जाएंगे, जहां भेजो वहीं जाएंगे।
किसी देश में रहें किसी वेश में रहें, बस तुम्हारे ही कहलाएंगे।

मात्र सौ साल पुरानी बात है अयोध्या के पं॰ उमापति मानते थे कि मैं वशिष्ठ गोत्री ब्राह्मण राम जी के कुल का पुरोहित हूं। वे मेरे जजमान हैं। वे रोज कनक भवन जाते और पुजारी को अपनी प्रसादी माला दे कर कहते हमारे जजमान को पहना देना। फिर खड़े होकर आशीर्वाद देते। उस समय के रसिक जन उनके सिद्ध भाव का आदर करते थे। वे एतराज नहीं करते, पर कुछ अक्खड़ संत भी होते हैं "अरे, बड़ा भारी पंडित बनता है, ठाकुर जी को अपनी पहनी हुई माला पहनाता है। भाव है तो अपने घर में जो चाहे करो, यहां मंदिर में ऐसा करना ठीक नहीं।" पुजारी जी से कहा "आज के बाद आप पहनी हुई माला नहीं, अमनिया पहनाएंगे।" पुजारी जी ने कहा "कोई बात नहीं, अमनिया पहना देंगे।" नई माला मंगा कर ठाकुर कनक बिहारी को जैसे ही पहनाई गई, माला खंड खंड हो कर गिर गई। लोगों ने कहा "शायद धागा कच्चा था।" मोटे रेशमी धागे में खूब मोटी माला पिरोई गई, लेकिन धारण कराते ही वह भी खंड खंड हो कर गिर गई। अनेक मालाएं इसी प्रकार गिर गईं तो प॰ उमापति जी ने माली से एक माला ली और ठाकुर कनक बिहारी को कहा "हम जानते हैं कि तुम हमारे शिष्य हो, गुरुजी की प्रसादी माला ही पहनोगे। लो बच्चा लो। रामभद्र, मंगल हो तुम्हारा, लो।" ऐसा कहकर माला पहनाई तो ठाकुर जी ने पहन ली।

कनक भवन में ठाकुर जी के तीन स्वरूप हैं। एक तो टीकमगढ़ महारानी के द्वारा पधराए हुए स्थिर विराजमान हैं। इनका नाम है श्री महल विहारी विहारिणी जी। एक खड़े स्वरूप द्वापर युग में स्वयं भगवान श्री कृष्ण और रुक्मिणी जी के द्वारा पधराए हुए हैं। वे तीर्थ यात्रा करते हुए अयोध्या जी गए तो वहां कनक भवन का निर्माण कराया और स्वयं यजमान बन कर सीताराम जी के विग्रह की प्रतिष्ठा की। इनका नाम है श्री कनक बिहारी विहारिणी जी। एक और छोटे ठाकुर जी विक्रमादित्य के द्वारा विराजमान किए गए ढाई हजार वर्ष पूर्व जिनके नाम से विक्रम संवत् चलता है। इन्हें मणि विहारी कहते हैं। ये झूला पर मणि पर्वत जाते हैं। एक बार इनका डोला उमापति जी के मुहल्ले से निकला तो ठाकुर जी ने सिर झुका लिया। इससे उनका मुकुट गिर गया। लोग समझे नहीं, बार बार मुकुट धारण कराएं और वह गिर जाए। तब लोगों की समझ में आया कि भैया उमापति जी के मुहल्ले में जब तक हैं, ठाकुर जी सिर झुका कर चलेंगे।

पंडित उमापति जी जब मंदिर में आते थे तो पुजारी को कहते "किशोरी जी की तरफ का फाटक थोड़ा सा लगा दो, पर्दा लगा दो। यह बहू है। इनको गुरु का संकोच होगा।" एक दिन पुजारी पर्दा लगाना भूल गया और ये पहुंच गए तो किशोरी जी ने मस्तक झुका लिया और अपने हाथ से अपनी ओर का फाटक बंद कर दिया। यह देखते ही उमापति पंडित जी फूट फूट कर रोने लगे। "मेरी बहू इतनी सुकुमारी है, माता कौशल्या ने दीपक की बत्ती आगे बढ़ाने की भी कभी आज्ञा नहीं दी और इन पुजारियों के प्रमाद के कारण हमारी बहूरानी को कष्ट उठाना पड़ा। आज के बाद कभी मंदिर में नहीं आऊंगा, वहीं से आशीर्वाद दूंगा।" ठाकुर जी रो पड़े, "क्यों नहीं आएंगे मंदिर में?" लोगों ने हा हा खा कर मनाया तब उन्होंने आना स्वीकार किया। आज भी किशोरी जी के नेत्रों में संकोच दिखाई पड़ता है।

अयोध्या के ददुआ राजा ने अपने महल की नींव रखी और उमापति पंडित जी को बुलाया तो उन्होंने मना कर दिया। वे बोले "ददुआ राजा मुझे बुला रहे हैं, उनके भाव का आदर है, पर मैं रामजी का पुरोहित हूं, ददुआ राजा का पुरोहित नहीं हूं।" वे धनाढ्य नहीं, बड़े अकिंचन ब्राह्मण थे। उस समय ददुआ राजा ने ऐलान किया था कि पंडित जी को एक हजार स्वर्ण मुद्रा प्रदान करेंगे, ये हमारे अयोध्या की शोभा हैं। लेकिन उनका भाव यही था कि हम राम जी के पुराहित हैं, किसी सामान्य राजा की पुराहिताई कैसे कर सकते हैं? इस प्रकार ठाकुर जी के प्रति भाव का आदर किया जाता है।

श्री गुसाँई जी ने ठाकुर जी की राग भोग सेवा के लिए अष्ट छाप की स्थापना की। श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु जी की शरण में जो सबसे पहले आए हैं वे हैं श्री कुंभन दास जी। उनके बाद सूरदास जी शरण में आए, फिर परमानन्द दास जी। फिर कृष्ण दास जी शरण में आए। ये

चार महाप्रभु जी के शिष्य हैं और चार गुसाँई जी के श्री गोविन्द दास जी महाराज जो श्रीदाम सखा के अवतार हैं, श्री चतुर्भुज दास जी, श्री छीत स्वामी जी और श्री नन्द दास जी महाराज।

सब मिल कर अद्‌भुत राग भोग की सेवा करते थे। एक दिन गुसाँई जी भोग के बाद प्रसाद पाने बैठे तो देखा कि साग में घास का एक तिनका है। देख कर रोने लगे, प्रसाद को साष्टांग प्रणाम करके एकांत में चले गए। सब सेवकों को सांप सूंघ गया। किसी ने भी जल तक ग्रहण नहीं किया। सारा का सारा श्री नाथ जी का प्रसाद गौमाता को जिमाया गया। गुसाँई जी सेवा में भी नहीं पधारे। शयन आरती के बाद सब आकर रोने लगे "क्या अपराध हो गया?" तब तक भी गुसाँई जी रो ही रहे थे। रोते रोते नेत्र सूज गए थे। लोगों ने पूछा तो बड़े व्याकुल होकर बोले "हमारे लाला इतने सुकुमार हैं और तुम लोग सेवा में इतनी असावधानी करते हो, यह हमको सहन नहीं होता लालजी की सब्जी में तिनका! अभी तो मैं जीवित हूं, मेरे सामने ही सेवा में इतनी असावधानी! अब मैं जीवित नहीं रहूंगा। भगवान की सेवा में असावधानी मुझे सहन नहीं होती।" सबने त्राहिमाम् त्राहिमाम् किया अब असावधानी नहीं करेंगे। लेकिन वे बोले, "जैसे वल्लभाचार्य महाप्रभु ने श्री कृष्ण वियोग में देह का त्याग किया वैसे ही मैं भी देह का त्याग करूंगा।"

गुसाँई जी ने काषाय वस्त्र ले लिए और ठाकुर जी से पूछने गए "जै जै, अब तुम्हारे सेवकों को तुम सम्भालो, हम तो जा रहे हैं।" ठाकुर जी रो पड़े "आप जा रहे हो, हम आपको मना नहीं कर सकते। आप जाओ, लेकिन मेरी एक प्रार्थना है मेरे अंग से पोशाक उतार कर मुझे भी अचला लंगोटी धारण करा दीजिए। मुझे भी वैराग्य के कपड़े पहना दीजिए।"

"जै जै, आपके बहुत मुकुट पोशाक हैं, आप काषाय वस्त्र क्यों पहनेंगे?"

"आप काषाय पहनेंगे और मैं पोशाक पहनूंगा? मुझे भी अपने साथ रख लीजिए। मैं आपके बिना नहीं रह सकता हूं।"

गुसाँई जी भगवान से चिपट कर रोने लगे। भगवान ने रोते हुए कहा "जब मैं बुरा नहीं मानता हूं तो आप इतना बुरा क्यों मानते हो?"

भैया, मानव शरीर धारण करने का यही फल है ऐसा अनुराग ठाकुर जी में हो जाए, ठाकुर जी ऐसे रीझ जाएं। कलियुग में द्वापर कियो . . . .

ऐसे श्री गुसाँई जी महाराज में दीनता कैसी

यत् दैन्यं त्वं कृपा हेतुर्नतदस्ति ममाण्वपि।
तां कृपां कुरु राधेश यया तद् दैन्यमाप्नुयाम्।।

हे प्रभो, दैन्य ही आपकी कृपा का हेतु है। जिसमें दीनता नहीं, उस पर आपकी कृपा नहीं हो सकती। पर हे नाथ, मुझमें वह दैन्य नहीं है। हे प्रभो, हे राधेश, मुझ पर कृपा करो जिससे वह दैन्य मुझे प्राप्त हो जाए।

षड्विधा शरणागति में अंतिम है दैन्य। जितना हो सके अपने को दैन्य भावों से भरो। एकदम मिटा दो अपने आप को।

एहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।

श्री गुसाँई जी का चरित्र बहुत विस्तृत है। उन्होंने अपने सातों लाल जी को अलग अलग सेवा प्रदान की और वैष्णवों को बुला कर पुष्टि मार्ग का सिद्धान्त समझाया तथा इसके प्रचार प्रसार का उपदेश दिया। आज किसी को पता नहीं चला कि गुसाँई जी ऐसा उपदेश क्यों दे रहे हैं। सहसा वे उठे, सेवकों को बुला कर कहा सेवा में प्रमाद नहीं करना, और श्री गिरिराज पर्वत पर चढ़ गए। पीछे से वैष्णव व्याकुल हो कर दौड़े। सबके देखते देखते गिरिराज जी में कंदरा प्रकट हुई और श्री गुसाँई जी उसमें प्रविष्ट हो गए। उस समय अपने चतुर्थ पुत्र श्री गोकुल नाथ जी को गुसाँई जी ने अपने कंठ की माला उतार कर दे दी थी। फिर कुछ आगे बढ़े तो उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधर लाल जी ने उनका उत्तरीय पकड़ कर खींचा। पटका उनके हाथ में आ गया और गुसाँई जी गिरिराज जी में प्रविष्ट हो गए। कंदरा का द्वार बंद हो गया।

उस समय ठाकुर जी की आकाश से आज्ञा हुई उत्तरीय से ही गुसाँई जी की सारी उत्तर क्रिया सम्पन्न करो।" सारा कर्म कांड उसी से किया गया।

पुष्टि मार्ग

भागवत के दस लक्षण हैं

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।

ये ही श्री कृष्ण के गुण हैं क्योंकि भागवत श्री कृष्ण का ही वांग्मय स्वरूप है। इसमें चौथा लक्षण है पोषण। पोषण का अर्थ हम सब समझते हैं पालन पोषण। लेकिन शुकदेव जी ने अर्थ किया है पोषणः तत् अनुग्रहः। यह अनुग्रह ही पुष्टि है। महाप्रभु जी कहते हैं कि भगवान का जीवों पर अकारण करुणा करने का जो स्वभाव है, आश्रितों के प्रति अपार वात्सल्य है, उनकी दया, कृपा के द्वारा ही जीव पोषित हो रहे हैं। संक्षेप में कृपा मार्ग का नाम पुष्टि मार्ग है। इसमें

भक्त को कुछ नहीं करना, सर्वतोभावेन उनकी शरण ग्रहण कर उनकी कृपा के आश्रित हो जाना है।

भगवान की कृपा सभी जीवों पर बरसती है, लेकिन विमुख प्राणी उस कृपा का अनुभव नहीं कर पाता। जो सत्संग प्राप्त करता है, ब्रह्मसंबन्ध प्राप्त कर लेता है उसे प्रतिक्षण कृपा का अनुभव होता है। अनुकूलता में भगवान की कृपा का अनुभव करना बड़ी बात नहीं, पर प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी भगवान की कृपा का अनुभव ही बड़ी बात है। ठाकुर जी ने हमें रहने के लिए धरती दी, जल दिया, हवा दी, जीवन के लिए निशुल्क सब कुछ दिया पर हमारे हृदय में कृतज्ञता नहीं है। भजन करना कृतज्ञता है, ठाकुर जी पर कोई उपकार नहीं है।

हमारे जीवन में प्रतिकूलताएं हमें भगवान के चरणों की ओर ले जाने के लिए आती है पर हम पहचान नहीं पाते कि यह भगवान की कृपा है। वास्तव में भगवान को भूल जाना ही विपत्ति है और याद करना ही सम्पत्ति है। पुष्टि मार्ग का तात्पर्य है वैष्णवता का मार्ग, भागवत धर्म का मार्ग, भक्ति का मार्ग क्योंकि ये सब कृपा पर आधारित हैं। वास्तव में सारे वैष्णव पुष्टि मार्गी हैं। काहू के बल भजन को, काहू को आचार, व्यास भरोसे कुंवरि के सोवत पांव पसार। अपनी सामर्थ्य कुछ नहीं, पर श्रीजी, ठाकुर जी की कृपा से कल्याण हो गया। ठाकुर जी से प्रार्थना है हम तो दीन हैं, आप अपनी ओर से कृपा करके हमें भजन में लगाइये। हे नाथ, जब तक यह शरीर रहे, आपका स्मरण होता रहे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने वृत्रासुर की चतुश्लोकी को पुष्टि मार्ग की नींव बताया है। इसका वर्णन भक्तमाल परिचय में आया है।

अष्ट छाप अष्ट सखा

भगवान श्री कृष्ण जब द्वापर में व्रज में लीला करते थे तो उनकी मधुर मधुर लीलाओं को देख देख कर सबको अपार सुख मिलता था। ठाकुर जी उनके सुख को देख कर लालायित हो गए और सोचने लगे कि नन्द बाबा, यशोदा मैया के जैसा सुख मैं भी अनुभव कर पाऊं। इसलिए उन्होंने गुसाँई विट्ठल नाथ जी के रूप में अवतार लिया जिसके लिए नाभा जी ने कहा कलियुग में द्वापर कियो।

नाभाजी ने भगवान श्री कृष्ण के सखाओं का वर्णन किया है

ब्रजराज सुवन संग सदन बन अनुग सदा तत्पर रहैं।।
रक्तक पत्रक और पत्रि सबही मन भावै।

मधुकण्ठौ मधुवर्त्त रसाल विशाल सुहावैं।।
प्रेम कन्द मकरन्द सदा आनन्द चन्द्रहासा।
पयद बकुल रसदान सारदा बुद्धि प्रकासा।।
सेवा समय विचारिकै चारु चतुर चित की लहैं।
ब्रजराज सुवन संग सदन बन अनुग सदा तत्पर रहैं।।

भगवान श्री कृष्ण ने द्वापर में जितनी मधुर लीलाएं की उनसे भी मधुर लीलाएं इस कलिकाल में की हैं। नाभाजी ने जिन सखाओं का वर्णन किया है वे सदा ठाकुर जी की सेवा का समय विचार कर नन्द सदन और वन में भी जब जैसी सेवा की आवश्यकता हो वैसा करने के लिए तत्पर रहते थे। किसी सखा की सेवा थी ठाकुर जी की पत्रावलि रचना। कोई कोई सखा तो बस इसी प्रयास में रहते थे कि ठाकुर जी खिलखिला कर हंसे कब कैसी बात बोलें, कैसा नाटक करें कि ठाकुर जी हंसे।

जब ठाकुर जी ने द्वापर की भांति कलिकाल में लीला करने का विचार किया तो सखाओं का साथ भी आवश्यक था अत: ये सखा भी पधारे। गुसाँई जी ने सन् १६०२ में अष्टछाप की स्थापना की जिनमें श्री कुंभन दास जी, सूरदास जी, परमानन्द दास जी और कृष्ण दास जी तो वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे तथा छीतस्वामी, चतुर्भुज दास जी, गोविन्द स्वामी और नन्द दास जी गुसाँई जी के शिष्य थे। ये सब भगवान के नित्य सखा ही थे।

ये अष्टयाम सेवा के लिए पधारते और गुसाँई जी के संकेत के अनुसार लीला के पृथक् पृथक् पदों की रचना करते और गायन करते। मंगला आरती, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन भोग, संध्या आरती और शयन सभी अवसरों पर पद गा कर श्री ठाकुर जी को रिझाते थे। इनमें से किसी ने संगीत की कोई डिग्री नहीं ली। ठाकुर जी के अनुराग के कारण ही समस्त राग रागिनी प्रकट होती थी। किसी आचार्य के पास पढ़ने नहीं गए, वे तो नित्य सखा हैं, पढ़े पढ़ाए ही आए हैं। इसलिए सुंदर पद रचना कर पक्के राग रागिनियों के द्वारा ठाकुर जी की सेवा करते थे। मन्मुखी ताल या स्वर नहीं रहता था।

ताल स्वर बहुत उत्तम हो पर हृदय में अनुराग न हो तो कलाकारी तो खूब दिखाई पड़ेगी पर रस नहीं होगा। यदि ताल स्वर का ज्ञान नहीं पर अनुराग है तो वैसा व्यक्ति कुछ भी अपने कंठ से बोलेगा तो रसीला लगेगा। कथंचित भगवान किसी पर ऐसी कृपा करें कि राग, ताल, सुर का अच्छा ज्ञान हो और हृदय में अनुराग सिंधु उद्वेलित हो रहा हो फिर वह प्रत्यक्ष लीला का दर्शन करता हुआ अपनी वाणी से रस वर्षण करे तो कैसा लगेगा? अष्टछाप के इन सखा का गायन ऐसा ही है।

श्री गोविंद स्वामी जी के विषय में बहुत प्रसिद्ध है कि वे जब मंगला के समय भैरव अथवा भैरवी में पद गाते थे तो ऐसी स्थिति आ जाती थी कि आरती करने वाले गुसाँई जी की भी

आरती ठहर जाती थी। जो जिस मुद्रा में रहता था वहीं चित्रलिखित सा रह जाता। जमुना जी के किनारे कभी पद गाते जो गोता लगाने वाला गोता लगाए ही रह जाता, वस्त्र निचोड़ने वाला वैसे ही ठहर जाता। तानसेन से प्रशंसा सुन कर अकबर बादशाह आया। ये नन्द घाट की बुर्ज पर बैठ कर गा रहे थे

अकेली जनि जाइयो राधे श्री जमुना के तीर।

बादशाह छिपे हुए सुन रहा था जड़ हो गया। सहसा उसके मुख से निकल गया वाह, वाह! आपने गाना बंद कर दिया। झांक कर देखा अकबर बुर्ज की छाया में बैठा था "तू कौन है वाह वाह करने वाला?"

तानसेन ने परिचय दिया "शंहशाह अकबर।" आपने कहा "राग जूठा हो गया, श्री जी के योग्य नहीं रहा।" मौन हो गए। अकबर चला गया। आपने इसके बाद भैरव से मिलते जुलते दूसरे राग तो गाए पर भैरव कभी नहीं गाया। उनकी सारी कला केवल ठाकुर जी के लिए थी।

अष्टछाप के इन सभी भक्तों के चरित्र हम यथा मति यथा समय देखेंगे।

***